RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-05
May-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

लोक जीवन में विद्यापति की प्रासंगिता एवं विशेषताओं का परवर्ती पीढियों पर प्रभाव

[1]स्वाति चौधरी [2]डॉ. ब्रजलता शर्मा

[1]शोधार्थी मानविकी एवं हिंदी विभाग हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय
[2]शोध निदेशक मानविकी एवं हिंदी विभाग हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 25 May 2019

Keywords
महाकवि विद्यापति जनचेतना, भावनात्मक उत्कर्ष

ABSTRACT

महाकवि विद्यापति के जन सरोकार, जनचेतना, भावनात्मक उत्कर्ष, अनुभूति की सूक्ष्मता का परिचय सही अर्थों में उनकी पदावली ही देती है, जो लोकभाषा में लिखी गई है। उनकी संस्कृत रचनाएँ तो उनके पाण्डित्य की द्योतिका हैं। पदावली की रचनाएँ मोटे तौर पर दो तरह की हैंदृएक भक्तिपरक और दूसरी प्रेमपरक। भक्तिपरक रचनाओं के आधार पर विद्वानों में उन्हें शैव,शाक्त, वैष्णव आदि तरह–तरह के सम्प्रदाय में बैठाने का मतभेद चलता रहा है, शायद समग्रता से विद्यापति का मूल्यांकन न कर पाने की स्थिति में यह मतभेद चलता ही रहेगा। शृंगारिक रचनाओं में भी उनके फलक काफी विस्तृत और बहुमुखगामी हैं। पर सारी स्थितियों के साथ जो एक विशेषता सर्वनिष्ठ है, वह है इन रचनाओं की गीतिमयता। गेयधर्मिता का यह उत्कृष्ट समायोजन महाकवि के अनूठे शिल्प का दर्शन कराता है। विद्वानों की बैठक से लेकर चूल्हे–चौके तक, गृहस्थों की मण्डली से लेकर साधुओं के समुदाय तक, भक्तों–पुजारियों से लेकर प्रेमी–प्रेमिका के प्रणय तक में यदि विद्यापति के गीत इतने प्रसिद्ध, प्रशंसित और मनोहारी हैं, लोक कण्ठ में बसी हुई सांस्कृतिक चेतना की तरह प्रिय हैं, तो इसके प्रमुख कारणों में से गीतिमयता का महत्त्व कम नहीं है। महाकवि के ये गीत शब्दानुशासन, छन्दानुशासन पर इनकी गहरी पकड़,उनके जन सरोकार तथा प्रामणिक जीवनानुभूति को तो उजागर करते ही हैं, संगीत शास्त्रा पर उनके नियन्त्रण को भी उद्भाषित करते हैं। और इन सबों के संयुक्त प्रभाव का ही फल है कि विद्यापति के गीत भावक के मन पर जादू का असर छोड़ते हैं।अतः प्रस्तुत शोध में लोक जीवन में विद्यापति की प्रासंगिता एवं विशेषताओं का अध्यन किया गया है एवं साथ साथ इसका परवर्ती पीढियों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्यन किया गया है

1. प्रस्तावना

विद्यापति को अक्सर सौन्दर्योपासक कवि कहा जाता रहा है। बंगला के एक समीक्षक ने कहा है, 'तिनि छिलेन सौन्दर्येर कवि'। लेकिन, यहाँ एक सावधानी की फिर आवश्यकता है। उनकी प्रेमपरक रचनाएँ इसका प्रमाण है कि ''सौन्दर्य का उपासक कवि सौन्दर्य का भोक्ता नहीं,निर्माता भी होता है। वह शारीरिक सौन्दर्य को आँखों की वस्तु मानता है किन्तु हृदय को तृप्त करने के लिए कुछ और चाहिए जो मात्र माँसल सौन्दर्य में उपलब्ध नहीं है, वह 'कुछ ही'विद्यापति का अपरूप है, सांसारिक होते हुए

भी उससे थोड़ा भिन्न। रमणीयता की परिभाषा देते हुए उसकी 'क्षण–क्षण परिवर्तित नूतनता' को आवश्यक गुण बताता जाता है, विद्यापति भी इसीलिए केवल नूतन सौन्दर्य के उपासक हैंदृउन्होंने इसे चिर नूतन यौवन, अभिराम यौवन का सम्बोधन दिया है।कृसौन्दर्य की पिपासा जब कवि के मन में जगती है तो उसे प्रकृति की प्रत्येक वस्तु सुन्दर लगती है, क्योंकि उसे अपने आदर्श सौन्दर्य की छाया ही सर्वत्र दिखाई पड़ती है।''

कहा जा चुका है कि प्रवृत्ति के आधार पर हिन्दी के आदिकाल और मध्यकालदृदोनों में विद्यापति की रचनाएँ दखल रखती हैं। यद्यपि भक्तिकाल के प्रारम्भ में ही महाकवि चल बसे। सन् 1405 के आसपास शिव सिंह का देहान्त हुआ, और कहा जाता है कि परम आत्मीय मित्र शिव सिंह के देहावसान के बाद उन्होंने शृंगार प्रधान रचनाएँ नहीं कीं। अर्थात् जो भी शृंगारिक रचनाएँ हैं वे भक्तिकाल से पूर्व ही रची गईं। फिर भी पदावली की शृंगारिक रचनाएँ, अपने समय के तीन सौ वर्ष बाद की शृंगारिक रचनाओं पर भारी पड़ती हैं।

प्रेम की भावना तथा अनुभूति की दुर्बलता के कारण ही रचनाओं में जीवन का वास्तविक मर्म नहीं उभर पाता। और तब जाकर वहाँ प्रेम तत्व और गीति तत्व दोनों का दुर्बल हो जाना जायज लगता है। डॉ. शिव प्रसाद सिंह को तो हिन्दी के सम्पूर्ण भक्ति–रीति साहित्य में गीतिकाव्य की शुद्ध प्रकृति का स्पष्ट आभास नहीं मिलता। 'प्रेम' की अनुभूति वस्तुतः मनुष्य को स्वच्छन्द करता है, उन्मुक्त करता है। वह किसी मर्यादा और किसी बन्धन को नहीं मानता। गीतिकाव्य के लिए भी इसी उन्मुक्तता, स्वच्छन्दता और रूढ़ि विरोध की जरूरत है। जो उस काल में विद्यापति के अलावा शायद उस रूप में अन्य किसी में नहीं पाया जाता था और यही कारण है कि गीतिकाव्य का जो उत्कर्ष उनके यहाँ दिखता है, वह शायद परवर्ती कवियों के यहाँ नहीं के बराबर।

गीतकाव्य को व्याख्याथित करते हुए प्रो. मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं, ''गीतकाव्य व्यक्ति के सम्वेदनशील चित्त में रूपायित भावनाओं का आवेगमय लयात्मक सहज प्रकाशन है। भवनाओं

RRIJM 2015, All Rights Reserved

की तीव्र आत्मानुभूति गीतकाव्य में कवि के व्यक्ति चित्त और लोकचित्त का एकात्म्य जरूरी होता है।'' इस आलोक में यदि विद्यापति के गीतों का अनुशीलन किया जाए तो साफ–साफ दिखता है कि यहाँ कवि का जीवनानुभव, आम जनता का अनुभव बनकर उतर आया है। व्यक्ति चित्त और लोक चित्त का ऐसा एकात्म्य अन्यत्र कम दिखता है:

सपने देखल हरि, गेलाहुँ पुलकें पुरि
जागल कुसुम सरासन रे।
ताहि अवसर गोरि नीन्द भाँगलि मोरि,
मनहि मलिन भेल वासन रे।
की सखि पओलह सुतलि जगओलह
सपनेहुँ संग छड़ओलह रे।

विरह व्याकुल नायिका नीन्द से सोई हुई है। स्वप्न में अपने प्रिय(कृष्ण) से मिलकर पुलकित है। कामदेव उनके अंग–अंग में जाग उठे हैं पर ऐसे ही अवसर पर राधा की सखि उसे जगा देती है। एक विरहिनी की इस दारुण दशा को विद्यापति ने अपनी उक्त पंक्तियों में व्यक्त किया है। नायिका अपनी सखि को उलाहना देती है कि सपने में भी मुझे तुमने अपने प्रिय से मन भर नहीं मिलने दिया। मेरा यह सुख छीनकर तुम्हें क्या मिला।कृयह लोक चित्त की दशा है। यह दशा केवल विद्यापति की राधा की ही नहीं, विरह की आग में झुलसती किसी भी नायिका की हो सकती है। नारी मन की इस व्यथा को राधा के सहारे व्यक्त करते हुए महाकवि ने आवेगमय भावनाओं का जिस लयात्मकता के साथ चित्रण किया है, उसे सिर्फ महसूस किया जा सकता है। कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए, कि व्यक्ति चित्त की भावनाओं को व्यक्त करते हुए महाकवि विद्यापति लोकचित्त की भावनाओं के इकलौते गायक हैं, जिनकी गीति शैली और अभिव्यक्ति कौशल में जनभावनाएँ आकार भी पाती हैं, ध्वनि भी पाती हैं और अपने समग्र प्रभाव के साथ उपस्थित होती हैं। गीतिकाव्य की विकास परम्परा के मद्देनजर महाकवि विद्यापति की गीति शैली का यह स्पर्श मात्र है।

2. लोक जीवन में विद्यापति

महाकवि विद्यापति के रचनात्मक संस्पर्श से गीति–परम्परा न केवल पुष्ट हुई, बल्कि उसकी दिशाएँ स्पष्ट हुईं और पीढ़ियों तक उसकी धारा बढ़ती गई। भक्तिकाल के सन्त कवियों में कबीर, दादू, मलूकदास आदि के पदों में गीति के उत्कृष्ट रूप दिखाई देते हैं। दिलचस्प है कि धर्मोपदेश, मानव–धर्म की स्थापना, अभेद और सहानुभूति के प्रचार, पाखण्ड एवं कर्मकाण्ड के खण्डन आदि के भाव चित्र के बावजूद इन पदों से गीति की तरलता कम नहीं हुई है। वैष्णव भक्त कवियों के यहाँ तो गीति का और भी नैसर्गिक रूप निखर उठा। अष्टछाप के सभी सन्त कवियों में, तुलसीदास, चण्डीदास, मीराबाई के पदों में गीति के मनोहारी फलक देखे जा सकते हैं। रीतिकाल के दौरान उक्ति–वैचित्रय और अलंकारों के आधिक्य के कारणय अथवा अन्य किसी वाजिब कारणों से गीतिकाव्य की परम्परा के विकास अथवा वहन का अवकाश नहीं मिल पाया। पर आधुनिक काल में आकर गीतिकाव्य की गौरवशाली परम्परा फिर से मुखरित हो उठी। जगजाहिर है कि भारतीय वातारण का आधुनिक काल व्यक्ति–स्वातन्त्रय, अतीत गौरव और राष्ट्रीय जागरण का समय था, और यह ऐसा समय था, जब ये सारी धारणाएँ सामूहिक धारणा के रूप में परिगणित थीं, पर साथ–साथ यह भी सच है कि ये समस्त भावनाएँ हर नागरिक का वैयक्तिक मसला था। स्पष्ट है कि गीतिकाव्य के विकास–प्रसार के लिए यह बहुत ही सही समय था। भारतेन्दु हरिष्चन्द्र के पदों, श्रीधर पाठक के राष्ट्र–गीतों में गीति का निर्वहण हुआ और आगे द्विवेदी युग में, छायावाद, उत्तर छायावाद के समय तक में, और फिर नवगीत के रूप में बाद के दिनों में खूब पल्लवित–पुष्पित हुआ। निराला, प्रसाद, पन्त, महादेवी, रामकुमार वर्मा, हरिवंश राय बच्चन, सियारामशरण गुप्त, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, रामधारी सिंह 'दिनकर',गोपाल सिंह 'नेपाली' की रचनाओं में इसके विलक्षण रूप देखे जा सकते हैं।

गीतिकाव्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में डॉ. शिव प्रसाद सिंह की राय है कि 'काव्य की अन्य विधाओं की तरह गीतिकाव्य चूँकि सचेत बुद्धि व्यापार से उत्पन्न वस्तु नहीं है, इसलिए आदिम मानव के अति पुरातन और आरम्भिक भावों के साथ ही गीतिकाव्य का जन्म हुआ। हालाँकि यह कहना कठिन है कि गीतिकाव्य के आविर्भाव का निश्चित काम क्या है, किन्तु इतना तो सहज अनुमेय है कि संवेगों की तीव्रता और उद्वेलन की सामान्य परिस्थितियों में भावाकुल अभिव्यक्ति ने स्वरों का रूप लियादृऐसे शब्द और अर्थ तथा उनकी पुनरावृत्तिदृयही गीतिकाव्य है।'

वैदिक काल से पूर्व की कोई प्रामाणिक जानकारी न होने की स्थिति में हम मान सकते हैं कि भारतीय गीतिकाव्य का आरम्भ वैदिक युग से हुआ। वैदिक गीतियों में गीतिकाव्य का स्वर मुखरित हुआ है। वैदिक ऋचाओं, भक्तिपरक स्तुतियों, समूहश्रम के समय श्रम की कठोरता की उपेक्षा और उसे भुलाने के निमित्त गाए जाने वाले समूहगीतों, वीरगाथाओं, प्रेमाख्यानों से होते हुए गीति यहाँ तक आ पहुँची कि अब यहाँ मानव मन की अत्यन्त कोमल भावना, एकान्त क्षण का मानसिक उद्वेग, मनुष्य की हार्दिक विह्वलतादृसबके सब यहाँ व्यक्त होने लगीं। मैथिली और हिन्दी गीतिकाव्य के पहले रचनाकार विद्यापति हैं। पूर्व में चर्चा हो चुकी है कि विद्यापति दरबारी कवियों की परम्परा के रचनाकार होने के बावजूद जनजीवन के प्रति पूरी तरह जागरूक थे। डॉ. शिव प्रसाद सिंह की राय में 'गीतिकाव्य में भाव की एकमेकता, गेयता, प्रभावान्विति और सम्बद्धता को विशेष लक्षण के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। गीतिकाव्य की इन विशिष्टताओं को दृष्टि में रखते हुए हम सहज अनुमान कर सकते हैं कि इस काव्य विधा में साहित्य प्रणयन करने वाला कवि हृदय से कुछ भावुक

RRIJM 2015, All Rights Reserved

और अपेक्षाकृत अधिक सम्वेदनशील व्यक्ति होगा।कृकवि के मन में गीतिकाव्यात्मक भाव की सृष्टि प्रायः शान्ति–विक्षेप के कारण ही होती है।कृयुग की समस्याएँ, संघर्षों की अवस्थाएँ भी कवि के मस्तिष्क को प्रभावित करती हैं।' पूर्व में भी इन तथ्यों का उल्लेख हो चुका है। गीतिकाव्य की ये सारी विशेषताएँ विद्यापति पदावली के हर पद में उपस्थित हैं।

हिन्दी साहित्य का काल विभाजन करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'वीरगाथा काल' में जिन ग्रन्थों को आधार बनाया, उनमें विद्यापति की दो कृतियों (कीर्तिलता, कीर्तिपताका) का उल्लेख है। इस वीरगाथात्मक काव्य में वीरगाथा के साथ–साथ अन्य कई सहगामी तत्वों पर कवि की लेखनी चली। पर समग्र रूप से यदि उनके काव्य संसार का अनुशीलन किया जाए तो 'वीरगाथा काल' के रचनाकार के साथ–साथ उनकी भक्तिपरक रचनाओं को देखते हुए उन्हें भक्तिकाल का पहला कवि माना जाना जायज होगा। जन–मानस और जन–भावना का जो सरल, सहज, अविरल स्रोत उनकी भक्तिपरक रचनाओं में एक साथ उपस्थित हैं, वह ईष्टदेव के प्रति समर्पण भाव के वैविध्य, गीति के उत्कर्ष, रचना कौशल की प्रगल्भता, जन चित्त–वृत्ति की परख, सामाजिक सरोकारदृसमस्त तत्वों के क्षितिज की ओर इशारा करती हैं। पूरी तरह से गम्भीर चित्रण, और जटिलता की कहीं कोई गुंजाईश नहींदृयह अद्भुत संयोग है।

उनकी प्रेम–प्रधान रचनाओं में कुछ और ही वैराट्य नजर आता है। बिना लाग–लपेट के यह कहने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए कि एक ही विद्यापति के यहाँ 'वीरगाथा काल', 'भक्तिकाल' और'रीति काल'दृतीनों की प्रवृत्तियाँ पूरी क्षमता के साथ हैं। यह दीगर बात है कि उनका जीवनकाल भक्तिकाल के पहले चरण में ही समाप्त हो जाता है। पर यह भी सत्य है कि एक बड़ा कवि अपनी रचना में भावी युग की घोषणा भी करता है। रचना फलक का यह वैराट्य कवि की गहन जीवन–दृष्टि का परिचायक है।

3. विद्यापति पदावली की गेयधर्मी विशेषताएँ

विद्यापति के पदों की सबसे बड़ी विशेषता उसकी संगीतात्मकता ही है। विद्वानों से लेकर हलवाहों तक की मण्डली में विद्यापति के पदों की लोकप्रियता का मूल कारण इसकी सहज संगीतात्मकता, सरल सम्प्रेषणीयता और उसमें व्याप्त लोक चित्त की भावनाओं का अनुगूँज ही है। गीतिमयता इन गीतिकाव्यों का प्राण–तत्व है। विदित है कि मैथिली में रचे गए उनके सारे पद गीति हैं। गेयधर्मिता की परिपूर्णता का ही परिणाम है कि गायन के समय न तो किसी सिद्ध संगीतज्ञ को रागों के सारे शास्त्रीय विधानों को लागू करने मेंय संगीत शास्त्रा के नियम–कायदे लगाने मेंय लय, ताल, छन्द, मात्र की गणना में कोई भी त्रुटि दिखतीय न ही संगीत शास्त्रा के व्याकरणिक शिष्टाचार से अनभिज्ञ किसी निपट साधारण व्यक्ति को। सारे ही लोग इन्हें तन्मयता से गाकर आत्मसुख प्राप्त करते हैं। अचम्भे की बात है कि एक ही गीत (उदाहरण देना आवश्यक हो तो तत्काल कखन हरब दुख मोर हे भोलानाथ को ले लें) को बगैर कहीं किसी शब्द और मात्र परिवर्तन के लोग कभी प्रातकालीय राग में गाते हैं, कभी सोहर की तरह, कभी समदाओन की तरह, कभी किसी और ही राग में, जबकि शास्त्रीय संगीत के अनुशासन में ये सारे अलग–अलग राग पर आश्रित हैं। वस्तुतः इन गीतों की संरचना में ही संगीतात्मकता इस तरह पिरोई हुई है कि लयबद्ध करने में गायकों को कोई असुविधा नहीं होती। प्रो. मैनेजर पाण्डेय का कहना है कि "गीतकाव्य में काव्यानुभूति के साथ गीतकार की तन्मयता के अनुरूप ही पाठकीय तन्मयता सम्भव होती है। गीतकाव्य वैयक्तिक अनुभूति की व्यंजना है, किन्तु उसमें लोक–हृदय का स्पन्दन भी होता है, यही कारण है कि वैयक्तिक गीत समूहगीत बन जाते हैं ।"

विद्यापति के गीतों में यह बहुत बड़ी विशेषता है कि यहाँ सारे काव्यगीतों में गीतकारों की तन्मयता के अनुरूप पाठकीय तन्मयता के सारे तत्व उपस्थित हैं, जिस कारण वे तत्क्षण उनमें लीन होकर एकात्म्य स्थापित कर लेते हैं। पाठक, भावक और गायकदृतीनों ही वर्गों के लोग इन गीतों में उतनी ही तन्मयता से खो जाते हैं, जितनी रचनाकार की रही होगी। उनकी गीति रचनाएँ, चाहे भक्तिपरक हों अथवा शृंगारपरक, शक्ति वन्दना हो या गंगा स्तुति या शिव नचारीयविरह–विलाप हो या मिलन–सुख के गीत३ सबके–सब भावक को लीन करने में सफल हैं। पावस की रात में मेघ जब अपनी सारी कलाओं से बरस रहा होता है, तब घर में अकेली बैठी कोई युवती अपने पिया की अनुपस्थिति की पीड़ा किस तरह सहती है, इसको चित्रित करते समय महाकवि ने जब 'सखि हे हमर दुखक नहि ओर' गीत लिखा होगा तो कितनी तन्यमयता रही होगी, यह कल्पना उस गीत की पंक्तियों को देखकर की जा सकती है। इस गीत में यौन पिपासा, देह लिप्सा और उद्धत कामुकता से आतुर किसी कामुक युवती की अश्लील काम भावना नहीं, विरह की आत्यन्तिक पीड़ा सहती, प्रेम रंग में रंगी एक प्रेम तपस्विनी की व्यथा व्यक्त हुई है, जिसे सुनकर, पढ़कर या गाकर लोग उस दृश्य से एकात्म्य स्थापित कर लेता है। इन गीतों में मणि कांचन संयोग की दशा ये है कि एक तरफ चित्रण ऐसे उत्कर्ष पर और दूसरी तरफ गीतिमयता यह, कि पढ़ते हुए पाठक के भीतर आप से आप कोई संगीत बज उठे। शब्दों के उच्चारण होते ही अनुभव हो कि शायद आसपास कोई वाद्य यन्त्र बज रहा है, कोई मादक संगीत चल रहा है, जो भीतर से हृदय को कहीं कुरेदता हैः

झम्पि घन गरजन्ति सन्तत भुवन भरि बरिसन्तिया
कन्त पाहुन काम दारुण सघने खर शर हन्तिया।
कुलिश कत शत पात मुदिर मयूर नाचत मातिया
मत्त दादुर डाके डाहुकि फाटि जायत छातिया।

विद्यापति के इन गीतों को आदर्श मानने वाले भावकों को प्रो. मैनेजर पाण्डेय की यह धारणा सही लगेगी कि "गीत

काव्य में नाद–तत्व या संगीत सम्वेदना से उद्भूत लयात्मक बोध अनिवार्य होता है। गीत और संगीत का सम्बन्ध आत्मिक है, आन्तरिक है। गीत काव्य में भावों की गति लयात्मक होती है।कृसंगीत गीतकाव्य का सहज अंग है। गीतकाव्य में कहीं संगीत से काव्यत्व दब जाता है और कहीं काव्यत्व से संगीत अनुशासित होता है, लेकिन श्रेष्ठ गीतकाव्य में काव्य और संगीत का पूर्ण सामंजस्य होता है(भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्यध्पृ. 261)।''महाकवि विद्यापति के इन गीतों को देखते हुए स्पष्ट होता है कि यहाँ भावों की लयात्मक गति में काव्य और संगीत का अनूठा सामंजस्य है। प्रो. पाण्डेय कहते हैं, ''विद्यापति के पदों में सौन्दर्य चेतना का आलोक भावानुभूति की तीव्रता, घनत्व एवं व्यापकता और लोकगीत तथा संगीत की आन्तरिक सुसंगति है। कुछ आलोचकों का मत है कि विद्यापति के गीत लोकगीत के अधिक निकट हैं और उनमें संगीत की शास्त्रीयता का अभाव है। विद्यापति के गीतों में संगीत के तत्वों का अभाव नहीं है, क्योंकि लोचन कवि ने रागतरंगिनी में विद्यापति के गीतों की संगीतात्मकता का विशद विवेचन किया है। विद्यापति के गीतों का प्रभाव सूरदास के लीला पदों के रूप में दिखाई पड़ता है३विद्यापति और सूरदास दोनों ही भक्ति आन्दोलन के कवि हैं, दोनों के काव्य में लोक गीत की मौखिक परम्परा का सर्जनात्मक रूप व्यक्त हुआ है। ये दोनों ही हिन्दी जगत के दो जनपदों की भाषा के ग्रामगीतों के कलात्मक रूप के निर्माता और उन गीतों में जन संस्कृति के रचनाकार हैं ।''

जिन आलोचकों ने विद्यापति के गीतों को लोकगीत के करीब और इनमें शास्त्रीयता का अभाव माना है, उन्होंने अपना निर्णय शायद बहुत जल्दबाजी में दिया है और विद्यापति के गीतों का बगैर अनुशीलन किए दिया है। विभिन्न स्थानों से विद्यापति की जो पदावलियाँ हासिल हुई हैं,उसमें संकलित पदों के शीर्ष पर रागों का नाम उल्लिखित है कि कौन–सा गीत किस राग में गाया जाएगा। मालव राग, धनछरी, सामरी, अहिरानी, केदार, कानड़ा, कोलाथ, सारंगी, गुंजरी, बसन्त,विभास, नटराग, ललित वरली आदि रागों का उल्लेख पदों के शीर्ष पर है। जिन आलोचकों ने'बाजत द्रिगि–द्रिगि धौद्रिम द्रिमिया' जैसे विद्यापति के कई गीत पढ़े होंगे और विद्यापति के अन्य सारे गीतों में भी राग की सुसंगति बैठाकर उसे देखा होगा, वे निश्चय ही ऐसी भाम्रक बातें नहीं करेंगे और प्रो. पाण्डेय की तरह ही विद्यापति के गीतों में लोक गीतों और संगीतों की सुसंगति पाएँगे, यहाँ ग्रामगीतों के कलात्मक रूप पाएँगे और यहाँ जन संस्कृति की मौजूदगी पाएँगे। विद्यापति के गीतों में संगीत की शास्त्रीयता का अभाव ढूँढने वाले विद्वानों को यह समझना चाहिए कि संगीत की शास्त्रीयता का जो रूप उन्हें आज दिख रहा है, उसके विकास–सूत्र का भी कोई न कोई छोर उन्हीं वैदिक गीतियों और लोककण्ठ में बन्धा होगा जहाँ से विकसित होकर काव्य की एक धारा गीतिकाव्य तक पहुँची है। संगीत की शास्त्रीयता का निर्धारण कोई रातों रात नहीं हो गया। मानव सभ्यता के विकास की तरह, इसकी भी एक विकास परम्परा है।

महाकवि विद्यापति के कई गीत यदि लोक कण्ठ में रच–बस गए हैं तो उसका कारण यही है कि यहाँ शब्द संगीत नाद संगीत और भाव संगीतदृतीनों एकमेक होकर ऐसी त्रिवेणी बहा रहा है,मानो गीतिकाव्य का आनन्दातिरेक यहीं से शुरू होकर यहीं खत्म हुआ चाहता है। जब 'के पतिया लए जायत रे', 'सखि हे, हमर दुखक नहि ओर', 'सखि की पूछसि अनुभव मोहि', 'प्रथम समागम भुषल अनंग', 'उगना रे मोर कतए गेलाह', 'जय–जय भैरवि असुर भयाउनि', 'बड़ सुखसार पाओल तुअ तीरे'कृजैसे गीतों के पद पढ़े जाते हैं तो इनमें शब्द संगीत, नाद संगीत और भाव संगीत की ऐसी ताकत भरी हुई है कि बिना किसी प्रयास के नितान्त अपटु और लयहीन मनुष्य के मुँह से भी गीत फूट पड़ता है। उनके गीतों को गाने की जरूरत नहीं होती, यहाँ संगीत तत्व इतना बलवान है कि वह स्वतः फूट पड़ता है।

विद्यापति के गीतों के सन्दर्भ में यह कथन सौ फीसदी सच है। जनपद में लोकगीतों की तरह व्याप्त उनके गीतों का कारण ढूँढने में पाठकों को अधिक परेशानी नहीं होनी चाहिए। यहाँ मनुष्य के राग–विराग, संयोग–वियोग, क्रोध–स्नेहकृ रंग और पानी की तरह घुला–मिला है। यह विभाजन रेखा खींचना कठिन है कि जनपद की कौन–सी कहावत और कौन सा मुहावरा उनके गीतों में आकर साहित्य बन गया है और कौन सी पंक्ति लोक कण्ठ में जाकर कहावत बन गई है। किसी के आगमन के लिए काक–शकुन की प्राचीन परम्परा मिथिला में है। महाकवि विद्यापति जब विरह व्याकुल नायिका द्वारा 'काग' की खुशामद करने वाले गीत में इस लोक सत्य को व्यक्त करते हैं तो वह एक परिष्कृत रूप के साथ सामने आता है। आज भी इस पद की पंक्ति किसी प्रतीक्षा करती नायिका के मुँह से निकल जाता है:

मोरा रे अँगनवाँ चनन केरि गछिया
ताहि चढ़ि कुररय काग रे
सोने चोंच बाँधि देब तोयँ वायस
जओं पिया आवत आज रे।

आम जन–जीवन की सामान्य सचाई है कि किसी भी तरुणी का प्रीतम जब उससे अलग रहता है तो सतत वह उसके सम्बन्ध में ही सोचती रहती है। कामदग्धा नायिका की जो आकांक्षाएँ जाग्रतावस्था में पूरी नहीं होती और हरदम जिसके लिए व्याकुल रहतीं, स्वप्न में उसकी पूर्ति शुरू हो जाती है। लेकिन इस आकांक्षा पूर्ति की लालसा इतनी उत्कट रहती है कि वैसे हाल में वह सोई नहीं रह पाती। अपनी आंगिक और वाचिक चेष्टाओं के कारण जग जाती है। फलस्वरूप नीन्द में पूरी होने वाली आकांक्षा भी अपूर्ण रह जाती है:

सुतलि छलहुँ हम घरबा रे गरबा मोतिहार
राति जखनि भिनुसरबा रे पिया आएल हमार

RRIJM 2015, All Rights Reserved

केहनि अभागलि बैरिनि रे भाँगलि मोहि निन्द
भल कए नहिं देखि पाओल रे गुनमय गोविन्द

स्वप्न–सुख और स्वप्न का सुख–भंग विद्यापति के यहाँ कई रूपों में कई–कई गीतों में दिखता है। लोक जीवन की अनुभूतियों के कई–कई चित्र उनके यहाँ काफी स्वच्छ, निष्कपट और सरल रूप में अपने पूरे सामर्थ्य के साथ मौजूद हैं।

4. भक्ति एवं शृंगार का द्वन्द्व और विद्यापति पदावली

विद्यापति पदावली, भक्ति और शृंगार के बीच विषुवत् रेखा जैसी इसी विभाजक सीमा को समझने हेतु अनुपम उदाहरण है। महाकवि ने माधव की प्रार्थना करते हुए लिखा हैदृ'तोहें जनमि पुन तोहें समाओब, सागर लहरि समाना।' उत्स और विलीन हो जाने का यह एकात्म, आत्मा और परमात्मा की यह एकात्मता उनके यहाँ शृंगारिक पदों में बड़ी आसानी से मिलती है। अपने प्रेम–ईष्ट के प्रति उपासिका का समर्पण इसी तरह का भक्तिपूर्ण समर्पण है।

पुराकाल से लेकर आज तक के भक्ति गीतों, प्रार्थनाओं, श्लोकों या ऋचाओं को देखें तो वहाँ भक्ति के नाम पर यही समर्पण, कृतज्ञता, श्लाघा, एकात्मता आदि व्यक्त हैं। तुलसी अपने ईष्ट'राम' के रूप, गुण, परिवार, कृति, कर्तव्य, महिमा आदि का बखान करते हुए, अपनी दीनता बखानते हुए ईष्टदेव को प्रसन्न करते हैं और अपने लिए मुक्ति माँग लेते हैं। कहीं पर अपने ईष्टदेव की ब्याज–प्रशंसा और उनसे नेह नहीं रखने वालों की भर्त्सना करते हैं। मीरा तो दो कदम और आगे बढ़कर वहाँ दोनों तरह के प्रेम को एकीकृत कर देती हैं। यहाँ तो स्त्री–पुरुष और भक्त–भगवान की कोई सीमा रेखा ही नहीं रह जाती। वे कृष्ण को अपना पति ही मान बैठती है, 'गिरिधर मेरो साँचो प्रियतम।' पूर्ण समर्पण और मुग्ध प्रशंसादृये दोनों भाव उनके यहाँ व्याप्त हैं।

विद्यापति के भक्ति प्रधान गीतों और शृंगार प्रधान गीतों की विवेचना थोड़ी सावधानी से करने की जरूरत है। क्योंकि, अन्य भक्तिकालीन कवियों की तरह उनके यहाँ न तो एकेश्वरवाद है, न ही अन्य शृंगारिक कवियों की तरह लोलुप भोगवाद। एक डूबे हुए काव्य रसिक के इस समर्पण में ऐसी जीवनानुभूति है कि कहीं भक्ति, शृंगार पर, और ज्यादातर जगहों पर शृंगार, भक्ति पर चढ़ता नजर आता है। उनके यहाँ भक्ति और शृंगार की धाराएँ कई–कई दिशाओं में फूटकर उनके जीवनानुभव को फैलाती हैं और कवि के वैराट्य को दर्शाती हैं।

हो न हो विद्यापति के पदों में संगीतमयता, प्रेम और भक्ति के इतने उत्कृष्ट रूप का कारण उस विरासत का प्रभाव भी हो। पर आचार्य शुक्ल की राय में भक्तिपरक रचनाओं में शृंगारिक पुट होना कुछ ठीक–सा नहीं हुआ। सूर के पदों के हवाले से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस बात की शिकायत की है कि भक्ति रचना में शृंगारमय आत्मोत्सर्ग की अभिव्यंजना का समाज पर कल्याणकारी असर नहीं हुआ। विषय वासना में रत रहने वाले स्थूल दृष्टि के लोगों पर इसका प्रभाव ठीक नहीं पड़ा। आगे के साहित्य में उन्मादकारिणी उक्तियों से भरी शृंगारिक रचनाओं को उन्होंने इसके परिणाम के रूप में देखा है।

विद्यापति के यहाँ भक्ति और शृंगार का यह रूप कुछ भिन्न है। यहाँ लोग चाहें तो आज की परिपाटी के अनुसार शृंगार और भक्ति की रचनाओं को अलग–अलग करके देख सकते हैं। ऐसे सच यह भी है कि विद्यापति के मैथिली में लिखे गए राधा–कृष्ण प्रेम विषयक गीतों को कई कृष्ण भक्त भक्तिगीत के रूप में गाते हैं।

विद्यापति के पदों के सन्दर्भ में प्रो. मैनेजर पाण्डेय के कथन के सहारे ही बातें खुलती हैं कि लौकिक प्रेम ही ईश्वरोन्मुख होकर भक्ति में परिणत हो जाता है। लौकिक प्रेम भी जोड़ने का काम करता है और ईश्वरीय प्रेम भी। एकात्म की जो स्थिति भक्ति में दिखाई देती है और विद्यापति जिसे आत्मा परमात्मा के मिलन रूप में कहते हैंदृ'तोहे जनमि पुनि तोहे समाओब सागर लहरि समाना'दृयह स्थिति लौकिक प्रेम में कैसे फलित होती है, यह देखने के लिए कृष्ण के विरह में नायिका द्वारा गाया गया वह गीत हैदृ'अनुखन माधव माधव सुमरइत राधा भेल मधाई।' अर्थात् सुध–बुध खोकर प्रेम दीवानी होने वाली राधा की जो व्याकुलता यहाँ है, भक्ति में यही व्याकुलता और विह्वलता भक्तों की होती है।

संगीत के अलावा भक्ति और शृंगार की यह तात्विकता जहाँ एकमेक होती है, वहाँ विद्यापति के कुछ भक्तिपरक पदों में शृंगार और भक्ति का संघर्ष भी परिलक्षित होता है। जो विद्यापति शृंगारिक गीतों में समर्पण और सौन्दर्य की हद तक लीन हैंय रमण, विलास, विरह, मिलन के इतने पक्षों को इतनी तल्लीनता से चित्रित करते हैंय और 'यौवन बिनु तन, तन बिनु यौवन, की यौनव पिय दूरे' कहते हुए पिया के बिना तन और यौवन की सार्थकता ही नहीं समझते, वही विद्यापति अपने भक्तिपरक गीतों में विनीत हो जाते हैं और पूर्व में किए गए रमण और आराम को निरर्थक बता देते हैं:

आध जनम हम निन्दे गमाओल,
जरा शिशु कत दिन गेला,
निधुवन रमणी रसरंगे मातल,
तोहे भजब कोन बेला।

ये वही विद्यापति हैं, इतने मनोग्राही शृंगारिक गीतों की रचना करने के बाद, अन्त समय में'तातल सैकत वारि बिन्दु सम सुत मित रमणि समाजे' कह देते हैं। जिन्होंने शृंगारिक गीतों की नायिका के मनोवेग को जीवन दिया है, उसे प्राणवान किया है, वे विद्यापति उस 'रमणि' को तप्त बालू पर पानी की बून्द के समान कहकर भगवान के शरणागत होते हैं।

जावत जनम हम तुअ न सेवल पद,
युवति मति मञे मेलि,
अमृत तेजि किए हलाहल पीउल,

सम्पदे विपदहि भेलि

कहकर महाकवि स्वयं शृंगार और भक्ति के सारे द्वैध को खत्म कर देते हैं, ऐसा मानना शायद पूरी तरह ठीक न हो। पूरा जीवन मैंने आपकी चरण–वन्दना नहीं की, युवतियों के साथ बिताया,अमृत (ईष्ट भक्ति) छोड़कर विषपान कियादृयह भावना कवि की शालीनता ही दिखाती है। दो कालखण्डों और दो मनःस्थितियों में एक ही रचनाकार द्वारा रचनाधर्म का यह फर्क कवि का पश्चाताप नहीं, उनकी तल्लीनता प्रदर्शित करता है कि वह जहाँ कहीं भी है, मुकम्मल है। हम शृंगारिक कवि विद्यापति और भक्त कवि विद्यापति को तौलने और समझने का प्रयास तो अवश्य ही करें, उन्हें लड़ाने का प्रयास नहीं कर सकते। दोनों दोनों से या तो पराजित हो जाएँगे या दोनों दोनों पर विजय पाएँगे।

5. विद्यापति पदावली का भाषिक वैशिष्ट्य

विद्यापति पदावली की भाषा मैथिली है। अपनी भाषा और अपनी रचनाओं के बारे में विद्यापति इतने आश्वस्त थे, उन्हें इतना आत्म–विश्वास था कि अपनी प्रारम्भिक कृति 'कीर्तिलता', जिसे कुछ विद्वानों ने बाद के दिनों की रचना मानने का तर्क दिया है, में उन्होंने घोषणा कर दीदृ'बालचन्द विज्जावइ भासा। दुहु नहि लग्गइ दुज्जन हासा' अर्थात् बालचन्द्रमा और विद्यापति की भाषादृदोनों ही दुर्जनों के उपहास से परे हैं। इसी तरह 'महुअर बुज्झइ, कुसुम रस, कब्व कलाउ छइल्ल'दृअर्थात् मधुकर ही कुसुम रस का स्वाद जान सकता है, जैसे काव्य रसिक ही काव्य कला का मर्म समझ सकता है। जनोन्मुख होने के सम्बन्ध में तो उन्होंने साफ–साफ लिखादृ

सक्कअ वाणी बुहअण भावइ।
पाउअ रस को मम्म न पावइ।
देसिल वअना सब जन मिट्ठा।
तें तैसन जम्पओ अवहट्ठा।

अर्थात् संस्कृत भाषा बुद्धिमानों को ही भाती है। प्राकृत में रस का मर्म नहीं मिलता। देशी भाषा सबको मीठी लगती है, इसीलिए इस प्रकार अवहट्ट में मैं काव्य लिखता हूँ।

जाहिर है कि लोकरुचि और लोकहित के पक्ष में सोचने वाले इतने बड़े चिन्तक, जब पदावली रचने में लगे होंगे तो उन्होंने भाषा के बारे में एक बार फिर से सोचा होगा और उसकी भाषा तत्कालीन समाज की लोकभाषा मैथिली अपनाई होगी और अपने पदों में समकालीन समाज की चित्तवृत्ति का चित्र खींचा होगा।

मैथिली विद्यापति की मातृभाषा थी। उस काल के साहित्य या उससे पूर्व भी ज्योतिरीश्वर ठाकुर रचित 'वर्णरत्नाकर' के अनुशीलन से पता चलता है कि मैथिली उस समय की पर्याप्त समुन्नत भाषा है। 'वर्णरत्नाकर' जैसा प्रसिद्ध, उत्कृष्ट और प्राचीन गद्य ग्रन्थ अन्य किसी भी भाषा में उपलब्ध नहीं है। इस सत्य को स्वीकारने में पं. शिवनन्दन ठाकुर भी नहीं हिचकते (महाकवि विद्यापतिध्मैथिली संस्करणध्पृ. 64)। इस बात में कुछेक शोध में असहमति दिखाई देती है कि विद्वापति पदावली 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' के बाद की रचना हैय पर यह सर्वमान्य तथ्य है कि मैथिली में उन्होंने विपुल परिमाण में मुक्तक काव्य लिखे हैं, और उन्हें हम विद्वापति पदावली के नाम से जानते हैं।

विद्यापति की भाषा पर विचार करते हुए पं. शिवनन्दन ठाकुर लिखते हैं, ''भाषा के इतिहासदृऔर विशेषतः उस भाषा का इतिहास जिस पर अनेक अत्याचार हुआ हो और अभी भी हो रहा हो, जो विभिन्न विद्वानों द्वारा कभी बंगला तो कभी हिन्दी पर्यन्त बना दिया गया हो तथा जिसके मन्त्रमुग्धकारी पदों का प्रकाशन भाषाविज्ञान एवं मैथिली से अपरिचित अन्य भाषा–भाषी द्वारा होने के कारण अन्यान्य भाषाओं के रंग में इस तरह रंग दिया गया हो कि उसे विद्यापतिकालीन मैथिली के शुद्ध रूप में उपस्थित करना कठिन ही नहीं असम्भव जैसा हो गया होदृवह स्थिति वस्तुतः अत्यन्त रोचक और चित्ताकर्षक होगा।''

महाकवि विद्यापति के गीतों के ज्यादातर संग्रहों में पदावली का पाठ विशुद्ध नहीं है। पदावली पर प्रान्तीय भाषाओं के प्रभाव एवं सम्पादकों का मैथिली से अपरिचित रहने के कारण, पदों की भ्रामक व्याख्या कर दी गई है। नगेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा सम्पादित पदावली में तो वैसी भी रचनाओं को विद्यापति रचित मानकर संकलित कर दिया गया है जो 'रागतरंगिणी' की प्राचीन प्रति में दूसरे कवियों के नाम से संकलित हैं।दृइस तरह के कई तथ्यों पर पं. शिवनन्दन ठाकुर ने विस्तार से विचार किया है। पाठ दोष की इस अराजक स्थिति में विद्यापति के पदों की भाषा पर विचार करना कठिन है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह भी स्वीकारते हैं कि, ''पदावली की भाषा के अध्ययन में सबसे बड़ी कठिनाई किसी प्रामाणिक संशोधित संस्करण के अभाव की है। पदावली के अधिकांश संस्करण लिपिकारों की लेखन–विधि (वतजीवहतंचील) के कारण भ्रष्ट हो चुके हैं। अधिकांश पाण्डुलिपियाँ चूँकि नेपाल में मिलती हैं, इस कारण नेवारी लिपि का अनिवार्य प्रभाव दिखाई पड़ता है। बंगाक्षरों में लिखी हुई पाण्डुलिपियाँ न केवल शब्दों का गलत उच्चारण उपस्थित करती हैं, बल्कि उनके स्थलों पर ढाँचे में बंगीय प्रभाव ले आती है।''

उनकी भाषा की तल्खी यह रही कि समीपवर्ती कई अन्य भाषाओं के रचनाकार उनसे प्रभावित हुए बगैर नहीं रहे। बंगला, ओड़िया और असमिया के तत्कालीन साहित्य में या बहुभाषाविद प्रारम्भिक श्रेष्ठ रचनाकारों के यहाँ इन प्रभावों की तलाश की जा सकती है। पं. शिवनन्दन ठाकुर के अनुसार विद्यापति की कोमलकान्त पदावली पर बंगलाभाषी मुग्ध हो गए। उस भाषा के अनुकरण पर एक नई भाषा बनी जिसे अभी तक बंगलाभाषी लोग ब्रजबुलि कहते हैं। इस भाषा में सैकड़ों वैष्णव पद एवं कविताओं की रचना बंग प्रदेश में हुई। उन काव्यों को देखकर अभी भी कहना पड़ता है कि वह

मैथिली है, ब्रजभाषा अथवा बंगला नहीं । इस सम्बन्ध में डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी और डॉ. दिनेश चन्द्रसेन आदि का मत है कि कई बंगाली रचनाकार मैथिली पर मुग्ध होकर उसमें रचना करने लगे। शताधिक बंगाली कवियों ने इस भाषा में काव्य रचना की। अनुकरण का प्रवाह तो ऐसा हुआ कि कवि गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर पर्यन्त इसमें प्रवाहित हुए, पर इस दिशा में कोई अनुसन्धान नहीं हुआ कि यह भाषा कहाँ की है। भ्रम में इसे 'ब्रजबुलि' कहा जाता रहा, शोध करने पर निश्चित रूप से तय होगा कि यह मैथिली है।

उनकी भाषा के प्रभाव के सम्बन्ध में, उनकी भाषा की सम्प्रेषणीयता के सम्बन्ध में व्याकरणिक विधानों की व्याख्या तो भाषाई अनुसन्धान के लिए उपयुक्त होगा, पर इतना तय है कि इन गीतों में क्रियापद, भाषारूप, कारक रूप, परसर्ग, वर्तनी, क्रियारूप आदि की एकरूपता नहीं मिलती है। हालाँकि प्रामाणिक और प्रथम पाठ को देखे बिना यह कहा जाना बहुत उचित नहीं है, पर इस हाल में भी किसी सिद्धहस्त रचनाकार के लिए यह दोष नहीं है। वह भाषा का कैदी नहीं होता,वह भाषा को स्वरूप देता है। और, हमें यह कहना चाहिए कि महाकवि ने मैथिली भाषा को एक स्वरूप दिया, विविधता दी, विस्तार दिया, प्रवाह दिया।

6. परवर्ती पीढ़ियों पर विद्यापति का प्रभाव

किसी भी शक्तिशाली घटक के सान्निध्य में रहने पर उसका प्रभाव पड़ जाना सामान्य–सी बात है। चुम्बकों के बीच निरन्तर रखे रहने पर लोहे में भी चुम्बकीय गुण आ जाते हैं। महाकवि विद्यापति की काव्य परम्परा, विषय और शिल्प के स्तरों पर इतनी सशक्त थी कि न केवल मैथिली, बल्कि पूर्वोत्तर भारत की समस्त रचना–प्रक्रिया उनसे प्रभावित हो उठीं। रागतरंगिणी में संकलित पदों का विधिवत अनुशीलन करने पर विद्यापति के प्रभाव का प्रमाण मिलता है। राधाकृष्ण विषयक काव्य सृजन की परम्परा विद्यापति से पूर्व भी थी। पर विद्यापति ने राधा कृष्ण विषयक प्रेम को अपने गीतों के माध्यम से जो विस्तार दिया, उसका सहज प्रभाव उनके समकालीन कई रचनाकारों पर पड़ा। भाव, शिल्प, छन्ददृसब तरह से समकालीन रचना प्रक्रिया विद्यापति से प्रभावित हुई। मिलन–विरह, नख–शिख वर्णन, मान–अभिसार, भक्ति–शृंगार आदि विषयों पर तरह–तरह के छन्दों में गीत रचे गए। पदों के अन्त में भनिता, मिलन की उत्कण्ठा,विरह में व्यथा और व्याकुलता, मिलन के बावजूद अतृप्ति आदि–आदि उपादान उस समय के कई कवियों के यहाँ पाए गए। रागतरंगिणी में संकलित रचनाओं को देखने पर भी यह तय होता है।

परवर्ती काव्यधारा में मैथिली के सन्दर्भ में यही कहा जा सकता है कि लम्बे अन्तराल तक विद्यापति की परम्परा का ही लगभग निर्वाह हुआ। गोविन्ददास, उमापति, रत्नपाणि, हर्षनाथ,हरिदास, महाराजा महेश ठाकुर, लोचन प्रभृति ने तो महाकवि की परम्परा को ही आगे बढ़ाया। कुछ संकलनकर्त्ताओं ने तो अपनी रचनाओं की भनिता में विद्यापति का नाम जोड़ दिया और इस कारण अनुसन्धित्सु लोगों के लिए भी एक मुसीबत खड़ी हो गई। गोविन्ददास ने तो विद्यापति को खुलेआम अपना प्रेरणा–स्रोत ही मान लियादृ

कविपति विद्यापति मतिमाने,
जाक गीत जगचीत चोराओल
गोविन्द गौरि सरस रस जाने।

गरज कि केवल भाव ही नहीं, छन्द ही नहीं, विषय ही नहीं, भाषा रूप और उसके विविध व्याकरणिक पक्षों पर और वर्तनी तक पर विद्यापति का प्रभाव पड़ता रहा। हिन्दी के रीतिकलीन और भक्तिकालीन कवियों की तो एक लम्बी सूची बन सकती है, जिनकी रचनाओं में विद्यापति के प्रभाव दिखते हैं। सूरदास, बिहारी, देव, नन्ददास, केसवदास, बल्कि अष्टछाप के सारे कवि,मतिराम, मीराबाई, तुलसीदास, रसखान, जायसी, पद्माकर आदि की रचनाओं में या तो विद्यापति का सीधा प्रभाव दिखता है या विद्यापति द्वारा प्रारम्भ किए गए भावों, अर्थों, प्रतीकों का विकास।

सूरदास के यहाँ राधा–कृष्ण विषयक पदों में शृंगार और भक्ति का अपूर्व समागम है। सौन्दर्यपरक दोहों में सूर के यहाँ विद्यापति का स्पष्ट प्रभाव ढूँढने में कोई संशय नहीं होता। प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने भी यह बात कही है कि ''विद्यापति के गीतों का प्रभाव सूरदास के लीला पदों पर दिखाई पड़ता है।'' पिय मिलन के समय की आतुरता, विह्वलता, बेचैनी, अपनी सहज अभिव्यक्तियों पर अनियन्त्रण और अनायास चेष्टाओं का जो प्रखर रूप सूर की नायिका में है, वह विद्यापति की परम्परा का ही है। हिन्दी के अन्य परवर्ती कवियों पर भी उनके गीतों का प्रभाव खोजा जा सकता है।

महाकवि विद्यापति की पंक्ति 'तोहे जनमि पुनि तोहे समाओब, सागर लहरि समाना' को यदि कबीर की पंक्ति 'दरियाव की लहर दरियाव है जी, दरियाव और लहर में भिन्न कोयम?' को मिलाकर देखें तो भाव–साम्य की स्पष्ट छवि सामने आती है।

इसी तरह कृष्ण के अनुपस्थित होते ही विद्यापति की नायिका की सारी स्थिति सूनी हो जाती है। उनका मनोभाव कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया हैदृ

सुन भेल मन्दिर, सुन भेल नगरीय
सुन भेल दस दिस, सुन भेल सगरी'
और इधर गिरिधर गोपाल की अनुपस्थिति में मीराबाई की दशा भी कुछ ऐसी ही हो जाती है–
सूनो गाँव, देश सब सूनो, सूनी सेज अटारी३

इन दोनों उद्धरण को एक साथ देखकर प्रवृत्तिगत और शिल्पगत वैशिष्ट्य की समान छवि स्पष्ट हो जाती है।

इसी तरह निराला के पद्यखण्डदृ
नवगति, नवलय, ताल छन्द नव
नवल कण्ठ, नव जलद मन्द्र रव
नव नभ के नव विहग वृन्द को

नव स्वर नव वर दे३
पर विद्यापति की पंक्तिदृ
नव वृन्दावन नव नव तरुगण
नव नव विकसित फूल
नवल वसन्त नवल मलयानिल
मातल नव अतिकूल३
का स्पष्ट प्रभाव दिखता है।

नागार्जुन और राजकमल चौधरी के लिए तो विद्यापति आदर्श कवि रहे हैं। नागार्जुन ने तो विद्यापति के पदों का अनुवाद भी किया और राजकमल चौधरी ने अपनी कई कविताओं में बड़ी श्रद्धा से उन्हें स्मरण किया है।

हिन्दी के आधुनिक काल में आकर ंदेखें तो निराला, नागार्जुन, राजकमल चौधरी के साथ–साथ अन्य कई रचनाकारों की रचनाओं में भी विद्यापति के स्पष्ट प्रभाव दिखाई देते हैं। और यह केवल मैथिली तथा हिन्दी की बात नहीं है, असल में महाकवि विद्यापति के गीतों की प्रभाव–शक्ति ही इतनी प्रबल रही कि प्रान्तेतर भाषाओं तक पर प्रभाव हुए बगैर नहीं रहा। बंगाल,आसाम, ओड़ीसा तथा नेपाल की साहित्यिक परम्पराओं पर भी विद्यापति के गीतों का प्रभाव पड़ा। बंगाल में तथा आसाम में विद्यापति की मान्यता वैष्णव भक्त के रूप में हुई। विद्यापति के जिन गीतों को मिथिला में शृंगारिक गीत की सत्ता प्राप्त थी, बंगाल में वही कीर्तन के रूप में अभिगृहीत हुए। चौतन्यदेव समेत कई वैष्णव भक्तों ने इसका अनुसरण किया। कई बंगला कवियों ने इस भाषा तथा भाव का अनुकरण करते हुए काव्य सृजन किए जो 'ब्रजबुलि साहित्य'के नाम से ख्यात हुआ।

7. उपसंहार

विद्यापति के अवसान को अभी बहुत दिन नहीं हुएय छह–सात सौ वर्षों का समय इतिहास के लिए बहुत ज्यादा समय नहीं होता है। पर इतने कम दिनों में ही विद्यापति की छवि हमारे सामने एक मिथक जैसी बन गई है। सौन्दर्य का कवि, भक्त कवि, वैष्णव कवि, शाक्त कवि, शैव कवि३उन्हें सब कहा गया। दूसरी ओर नजर डालें तो मिलेगा कि उनको किम्बदन्ती पुरुष भी माना गया। उनके जन्म के पूर्व से लेकर पश्चात तक की जनश्रुतियों की प्रामाणिकता की खोज की जानी चाहिए। जनश्रुति है कि विद्यापति के पिता गणपति ठाकुर को पुत्र नहीं होता था। कपिलेश्वर स्थान (मधुबनी जिला में अवस्थित एक शिव–मन्दिर) में शिव की आराधना के पश्चात उनका जन्म हुआ। वे महाराजा शिव सिंह से दो वर्ष बड़े थे। नौ–दस वर्ष की अवस्था से ही वे पिता के साथ राजा गणेश्वर के दरबार में जाने लगे थे। कीर्तिलता की रचना उन्होंने 19–20 वर्ष की अवस्था में की (वैसे इस तथ्य का खण्डन करते हुए बड़े अकाट्य तर्क प्रस्तुत करते हैं) । सिंहासनारूढ़ होते ही शिव सिंह ने उन्हें 'विस्फी' गाँव दान में दे दिया। जनश्रुति है कि कर नहीं देने के अपराध में एक बार शिव सिंह को दिल्ली के इस्लाम बादशाह ने आमन्त्रित कर दिल्ली बुलाया और वहाँ गिरफ्तार कर लिया। विद्यापति उनको छुड़ाने दिल्ली पहुँचे। बादशाह ने उन्हें अदृष्ट रचना करने को कहा। उन्हें एक सन्दूक में बन्द कर कुएँ में लटका दिया गया और बाहर किसी युवती को आग फूँकने के लिए कहा गया। फिर कवि को बाहर निकाल कर कविता लिखने के लिए कहा गया। ऐसे ही उनके परोक्ष में किसी युवती को स्नान करने के लिए कहा गया और इस घटना पर उन्हें कविता लिखने को कहा गया। कवि ने ऐसे अवसर पर कविता लिखी। 'सुन्दरि! निहुरि फुकू आगि' और 'कामिनी करए असनाने' गीत ऐसे ही अवसर के हैं। बादशाह गीत सुनकर प्रसन्न हुए और शिव सिंह को लेकर महाकवि वापस आए। कहा जाता है कि एक समय महादेव प्रसन्न होकर गुप्त रूप से उगना के रूप में विद्यापति की सेवा करने लगे थे। उगना से सम्बन्धित कई कथाएँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि स्वप्न दर्शन के आधार पर उन्होंने अपने मृत्यु की घोषणा की और गंगा किनारे देह त्याग को चल पड़े। काफी दूर जाने के बाद एक जगह रुककर बोले कि जब गंगा मैया के दर्शन हेतु बेटा इतनी दूर आ सकता है तो कुछ दूर माँ को भी आना पड़ेगा, और गंगा वहाँ तक आई। इन किम्बदन्तियों का ऐतिहासिक प्रमाण क्या हैदृयह शोध का विषय है। पर इतना तय है कि उनकी रचनाओं का जो प्रमाण हमारे सामने उपलब्ध है, अभी पूरी तरह उस पर ही शोध नहीं हो पाया है।

सन्दर्भ ग्रथ सूची

- अवधेश प्रधान, कीर्तिलता और विद्यापति का युग, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सं॰ 2005
- ओंकार नाथ मिश्र, विद्यापति–पदामृत, प्रयाग पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, द्वि॰ सं॰ 2007
- किशोरी लाल गुप्त, सूरसागर (पांच खण्ड), लोकभारती–25ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, प्र॰ स॰ 2005
- हरदेव बाहरी, राजेन्द्र कुमार, सूरसागर सटीक, लोक भारती प्रकाशन, गांधी मार्ग, इलाहाबाद, स॰ 2005
- धीरेन्द्र वर्मा, सूरसागर सार, साहित्य भवन, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, द्वितीय सं॰ 2015
- रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, प्र॰ स॰ वि स॰ 2014
- शिव प्रसाद सिंह, कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा, वाणी प्रकाशन, 21ए, नई दिल्ली, सं॰ 2009
- कालिका प्रसाद, बृहत् हिन्दी कोश, ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी, 2012

RRIJM 2015, All Rights Reserved